अवधी के सोहर गीतों में सामाजिक चेतना

शेषधर यादव शोध छात्र, हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली : Email :sgbhu20@gmail.com

बीज शब्द- बँझिनिया- निःसंतान स्त्री, तिरिया- बेटी, झपटि- दौड़कर, सुघर- सुन्दर, काइथ- कायस्थ, दारुन- असहनीय, ठाढ़ी- खड़ी

सारांश- यह शोध आलेख उत्तर-भारत के एक वृहत्तर भौगोलिक क्षेत्र में संवाद के लिए प्रयुक्त की जाने वाली अवधी बोली के सोहर गीतों को आधार बनाकर लिखा गया है। सोहर गीतों के संदर्भ में उस क्षेत्र की सामाजिक दशा और दिशा को जानने का प्रयास किया गया है। लोकगीत पुराने जरूर है लेकिन उनकी अर्थवत्ता और प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। किसी भी समाज की दशा और दिशा को जानना हो तो उस क्षेत्र की स्त्रियों की स्थिति सबसे पहले देखी जानी चाहिए। उनके जीवन के दुःख-दर्द को समझने से सामाजिक स्थिति का आंकलन आसानी से किया जा सकता है। क्योंकि स्त्रियाँ समाज में सबसे आखिरी छोर (हाशिए) पर होती है। जिसके आधार पर समाज के अन्य वंचित तबकों की सामाजिक स्थिति-परिस्थिति का आंकलन आसान हो जाता है। अवध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नजर डालें तो यह पता चलता है कि यहाँ राजनैतिक उठा पटक के कई दौर आये। यह अंचल किसी न किसी रूप में सत्ताओं का केंद्र रहा है।इसलिए यह बहुत स्वाभाविक बात है कि यहां के समाज में सामंतो, राजाओं द्वारा बनाए गए नियम, कानून, प्रथाएं और परंपराएं प्रचलन में रही हैं। यदि समाज सामंती होगा तो वहस्वभावतः पितृसत्तात्मक होगा। वहाँ पर्दाप्रथा और वर्ण व्यवस्था के नियमों का कठोरता से पालन होता होगा। जहाँ स्त्रियाँ ही घर का कामकाजसंभालती हैं और परिवार की जो पहचान है वह पुरुषों से होती है।स्त्रियों के लिए यह नियति थी कि पति या पुरुष का बड़े से बड़ा अत्याचार भी चुपचाप सहन कर लेना है। क्योंकि यदि वह यहाँ मुकाबला कर भी लें तोपरलोक में जाकर उन्हें उसका दंड भुगतना पड़ेगा। क्योंकि उनकी स्वतंत्रता ईश्वर और धर्म की आज्ञा के खिलाफ पड़ती है। सामाजिक चिंतन या सामाजिक चेतना को देखने-परखने के एक से अधिक रास्ते होसकते हैं। हम जिस रास्ते विषय पर आएंगे उनमें से ही एक रास्ता वह भी है। किसी भी रचनाकार या रचना के सामाजिक दृष्टि, चिंतन या चेतना को समझने के लिए यह देखा जाना चाहिए की उसमें कौन-कौन से दुःख वर्णित हुए हैं। दुखों को समझेंगे तो सामाजिकता को समझने में आसानी होगी। हम यहां अपनी बात कबीर से शुरू करते हैं और अवधी के सोहर लोकगीतों में वर्णित दुखों तक आएंगे। कबीर दास लिखते हैं-

"घरी-घरी का लेखा मांगै चैतू काइथ नाउ।
बाबा अब न बसब यहीं गाऊँ।।"[1]

कबीरदास कह रहे हैं कि अब यह जगह (गाँव)रहने लायक नहीं है। वह जुलाहा समाज से आते हैं। बुनकारी का काम करते हैं। कायस्थ निगाह लगाए बैठे हैं कि इसकी इतनी चादर बिक गई। चलो इससे करवसूल लेते हैं। कबीरचादर बनाते हैं और बेचते हैं। कर वसूले जानेका दुःख कबीर का दुःख है।इसी तरह हम तुलसीदास के दुःखों को देखेंगे। कबीर अपने दुःख को आध्यात्मिकता के मुहावरों में व्यक्त करते हैं। जबकि तुलसीदास आध्यात्मिकता के इलाके में नहीं जाते हैं। उन्हें आध्यात्मिकता और रहस्य दोनों से परहेज है। तुलसी के सामाजिक चिंतन को समझने के लिए उनके दुःखों को देखना और समझना होगा।यह देखना होगा कि उन दुःखों का न्याय चेतना से क्या रिश्ता है।तुलसी के यहां तीन सबसे बड़े दुःख दिखाई देते हैं। तुलसीदास का पहला जो दुःख है वह जाति को लेकर है। इसमें किसी तरह की शंका नहीं है कि तुलसीदास की आस्था वर्णाश्रम व्यवस्था में है। मानस के बालकांड में सती,शिव से अनुमति लेकर अपने पिता प्रजापति दक्ष के यहाँ आई हैं। दक्ष ने उस यज्ञ में सती और शिव को आमंत्रित नहीं किया था। बिन बुलाए आने पर उनकी बहनें और बाकी सारे सगे- संबंधी इस बात को लेकर उनका उपहास करते हैं। शिव के अनेक नामों में से एक नाम अकुल भी है। अकुल का अर्थ है जिसके खानदान का अता-पता ना हो। शिव कुलहीन हैं। उनके घर -परिवार खानदान की कोई चर्चा नहीं मिलती है। हिंदी में अज्ञात कुलशील का मसाला बहुत पहले सेचला आ रहा है और अब तक चल रहा है।सती पर उस सभा में तंज कसे जाने के अनेक कारणों मेंसे एक कारण यह भी है। वहाँ तुलसीदास लिखते हैं-

"जद्यपि जग दारुन दुःख नाना।सब ते कठिन जाति अवमाना।
समुझि सो सतिहि भयउ अतिक्रोधा।बहु विधि जननी कीन्ह प्रबोधा।।"[2]

 Copyright @ 2024 Author

यद्यपि संसार में तरह-तरह के दु:ख हैं लेकिन सबसे कठिन हैवह है जातिगत अवमानना। जाति को लेकर किया जाने वाला अपमान है।

तुलसीदास के यहां दूसरा सबसे बड़ा दुख दरिद्रता है।

"अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारी के। कामद घन दारिद दवारि के।।"[3]

तुलसीदास राम का गुणगान कर रहे हैं और बता रहे हैं की दरिद्रता रूपी दावाग्निको शांत करने के लिए वह मेघ के समान हैं। राम शिव जी के सर्वाधिक प्रिय और पूज्य अतिथि हैं। मानस के सबसे अंतिम उत्तरकांड में चले जाइए वहाँ भी गरुड़ ने काकभुसुंडी से सात सवाल किए हैं। उनमें से एक सवाल यह भी है की इस संसार में सबसे बड़ा दु:ख कौन सा है। तुलसीदास वहाँ भी लिखते हैं-

"प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी।।"[4]

तुलसीदास उत्तर देते हुए लिखते हैं-

"नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥"[5]

दरिद्रता से बड़ा दुख दुनिया में कोई नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि धनवान या बहुत संपत्तिशाली हो जाना सुखी होना है। संतों की संगत उनके साथ मिल बैठना इससे बड़ा सुख कुछ नहीं है। आदिकवि वाल्मीकि और उनकी कविता भी दु:ख से उपजी है। वे देखते हैं कि नर- मादा क्रौंच पक्षी दोनों प्रेम की अवस्था में थे। बहेलिया के बाण सेनर क्रौंच मारा गया। क्रौंच पक्षी के दु:ख से कवि दु:खी हैं। वहाँ भी दु:ख से कविता पैदा होती है। यह न्याय चेतना है। उस जोड़े के साथ अन्याय हुआ है।कवि जब दूसरे के दु:ख से दु:खी हो तो उस स्थिति में उदबुद्ध न्याय चेतना अपने चरम पर होती है।

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुना देकमवधीः काम मोहितम्।।"[6]

रीतिकालीन हिंदी कविता के सामाजिक ताने-बाने में भी इसी तरह का दु:ख दिखाई पड़ता है। मतिराम के हवाले से यह बात कह रहा हूँ-

"क्यों इन आँखिन सो निहसंक ह्वै मोहन को तन पानिप पीजै?
नेकु निहारे कलंक लागै यहि गाँव बसे कहु कैसे कै जीजै।।"[7]

छंद में नायिका कह रही है कि निष्कंटक भाव से कृष्ण को निहारा भी नहीं जा सकता है। मतिराम रीतिकालीन श्रृंगारिक कवि हैं। रीतिकाल भक्तिकाल का परवर्ती चरण है। भक्तिभाव एकाएक खत्म भी नहीं हो सकता। वहाँ कृष्ण की जगह नायिका का प्रेमी भी हो सकता है। छंद में बात को भक्ति के बेसन में लपेटकर कहा जा रहा है। अगली पंक्ति में कहा जा रहा है कि क्षण भर निहार लेने से सर- माथेकलंक लग जा रहा है।एक टक देखने की बात तो जाने ही दीजिए। इस गाँव(स्थान) पर कैसे जिया जा सकता है। यानी जो उत्तर भारत के इलाके की सामाजिक संरचना है उसके ताने-बाने में प्रेम के लिए कोई स्पेस अभी भी नहीं है। आज से पाँच सौ साल पहले भी नहीं था। यह पूरे मध्यकालीन हिंदी कविता का दु:ख दर्द है।कमोबेश यही स्थिति काव्य में आदिकाल से लगाय रीतिकाल के अंत और उसके बाद तक मिल जाएगी। अब सोहर में अभिव्यक्त सामाजिकता की तरफ आते हैं।किसी भी सत्ता केंद्रित समाज में प्रेम की जगह नहीं के बराबर होती है। प्रेम स्वभावत: बराबरी केदर्जे की माँग करता है। स्वतंत्रता चाहता है।किसी भी तरह के दबाव या मजबूरी में प्रेम अपनी प्राकृतिक अवस्था में नहीं रह सकता। वर्गीय दृष्टिकोण से देखें तो उच्चवर्गीयपरिवारों में प्रेम की अभिव्यक्ति बहुत कम मिलती है। यदि मिलेगी भी तो बहुत ही प्रतीकात्मक और सांकेतिक रूप में। यहां पति-पत्नी के मध्य प्रेम ही मुख्य है और इसी की थोड़ी बहुत संभावना भी यहां बन सकती है। निम्नवर्गीय परिवारों की स्थितियाँ उससे बेहतर हैं। निचले वर्ग की स्त्रियां श्रमिक और कामकाजी होती हैं। उनकी यह आत्मनिर्भरता उनके भीतर आत्मविश्वास और अपनी सत्ताकी चेतना के लिए संबल देती हैं। इस कारण से वह बराबरी का दर्जा पाने में कुछ हद तक सफल होती हैं। यही कारण है कि जो सोहर हैं, प्रेम के गीत हैं वह श्रमिक वर्ग और कृषक जन से जुड़े हुए हैं। उनमें प्रेम का भाव विद्यमान है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा और गरिमा का भाव दिखाई देता है। सामाजिक स्थिति या समाज चिंतन को देखने के लिए पूर्व में बताए गए दु:खों को यहां अवधी सोहर के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जाना चाहिए। अवधी क्षेत्र में गाए जाने वाले सोहर का उद्धरण नीचे दिया जा रहा है-

"चलहु न सखिया सहेलरि जमुनहि जाइय हो।

 Copyright @ 2024 Author

जमुना कै निर्मल नीर कलस भरि लाइय हो॥१॥
केऊ सखी जल भरैं केऊ मुख धोवइँ हो।
केऊ सखी ठाढ़ी नहाइँ त्रिया एक रोवइ हो।२॥
की तुहें सासु ससुर दुख की नैहर दूरि बसै।
बहिनी! की तुमरा कन्त बिदेस कवन दुख रोवउ हो ॥३॥
ना मोहें सासु-ससुर दुख ना नैहर दूरि, बसै।
बहिनी! ना मोरा पिया परदेस कोखि दुख रोवउँ हो ॥४॥[8]

यहाँ लोकगीत की स्त्री का अपना दु:ख है। उसके पास सब कुछ है। सखियों के पूछने पर वह बताती है कि उसका प्रिय या पति भी साथ ही रहता है।सास- ससुर,नैहर सब कुछ साथ हैं,आसपास हैं। उसे दु:ख इस बात का है कि वह संतानविहीन है। साथ की सारी सखियाँ प्रसन्न हैं लेकिन एक स्त्री है जिसका मन किसी अन्य काम में या उत्साह में शामिल नहीं है। स्त्रियों में संतान की लालसा प्रबल होती है यहाँ तक तो बात ठीक है। लेकिन संतानविहीन स्त्री को बहुत तरह के तंज-ताने सुनने को मिलते हैं।

"सासू मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजवासिनि हो।
रामा जिनकी मैं बारी रे वियाही उइ घर से निकारेनि हो।॥१॥
घरवाँ से निकरि बँझनियाँ जंगल बिच ठाढ़ी हो।
रामा बन से निकरी बघिनियाँ तो दुखु सुखु पूँछइ हो।
तिरिया! कौनी विपतिया क मारी जंगल बिच ठाढ़ी हो॥२॥
सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ ननद ब्रजवासिनि हो।[9]

आखिर यह किस तरह का समाज है जहाँ आज भी संतानविहीन स्त्रियों को इस तरह की अवमानना सहनी पड़ती है। आप भक्त कवयित्रि मीरा को याद कीजिए। सास -ननद और बहू के रिश्ते को देखिए। उत्तर भारत के लोकगीतों में सास और ननद के बारे में क्या नहीं कहा गया है।यहाँ लोकगीत में स्त्री जिस किसी के भी पास गई सब ने उसे किसी भी तरह की पनाह देने से इनकार कर दिया। यह समस्या लोकगीतों के रचनाकाल की ही नहीं है। यह आज की भी समस्या है। न जाने कितनी स्त्रियां संतान के अभाव में आज भी प्रताड़ित की जा रही हैं। कितनी परित्याग कर दी जाती हैं इसका अनुमान लगा पाना कठिन है। एक ऐसा समाज जहाँ पहले मर्दों को एक से अधिक विवाह करने की स्वतंत्रता थी। लेकिन स्त्रियों को नहीं थी। स्त्रियों को अपने पति की मृत्यु के साथ ही जल भुन जाना होता था, सती होना पड़ता था। इसके अलावा एक अन्य विकल्प उनके पास मौजूद था की आजीवन वैधव्य का निर्वहन करें। एक ऐसा समाज जहाँ पति- पत्नी से या पिता बेटे -बेटी से खुलकर सबके सामने बात नहीं कर सकता था। यौन संबंधों को लेकर समाज में एक कठोर किस्म की नैतिकता थी। यही कारण रहा होगा की बाल विवाह कर दिया जाता था।ऐसे समाज में विवाह के पहले प्रेम की कोई गुंजाइश नहीं थी। बहुत कुछ स्थितियाँ जस की तस आज भी मौजूद हैं। जहाँ बर -कन्या एक दूसरे का वरण अपनी इच्छा से नहीं कर सकते। माता-पिता या उसमें भी पिता की इच्छा सर्वोपरि होती है। ऐसे समाजमें स्वतंत्र प्रेम की संभावनाओं और स्थितियों पर प्रश्न चिन्ह लगना स्वाभाविक है।

इन सारी बातों के बावजूद भी अवधी क्षेत्र के सोहर लोकगीतों में प्रेम की अभिव्यंजना विविध रूपों में दिखाई पड़ती है।इस विशिष्ट सामंती समाज के दबाव में जहाँ उच्चवर्गीय तबकों में प्रेम संकेतात्मक या प्रतीकात्मक रूप में आता है। वहीं वह निचले तबके में जहाँ सामंती समाज का शिकंजा उतना कठोर नहीं है। वह अपने जीवन में सारी बातों के लिए छूट लेते हैं। वेअपने हर्ष- उल्लास, उत्साह, शोक, इच्छा- आकांक्षा आदि को अपेक्षाकृत अधिक सहजता और खुलेपन के साथ अभिव्यक्त कर सकते हैं।

सामंती समाज व्यवस्था का विरोध

अवधी के सोहर गीतों में सामंती स्थितियों का विरोध जगह-जगह सीधे और सपाट ढंग से तथा अधिकांशत: प्रतीकात्मक ढंग से दिखाई पड़ता है। अवधी का एक बहुप्रचलित सोहर जिसमें एक हिरनी राजा दशरथ की पत्नी कौशल्या से संवाद करती है वह उल्लेखनीय है -

"छापक पेड़ छिउलिया तौ पतवन गहबर।
अरे रामा तिहि तर ठाढ़ी हरिनियाँ त मन अति अनमनि हो।।१।।

 Copyright @ 2024 Author

चरतइ चरत हरिनवाँ तौ हरिनी से पूँछइ हो।
हरिनी की तोर चरहा झुरान कि पानी बिन मुरझिउ हो॥२॥
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी बिन मुरझिउ हो।
हरिना आजु राजाजी के छट्ठी तुम्हें मारि डरिहइँ हो॥३॥
मचियै बैठी कौसिल्ला रानी हरिनी अरज करइ हो।
रानी मसुवा तौ सिझहीं रसोइयाँ खलरिया हमैं देतिउ॥४॥
पेड़वा से टँगबइ खलरिया त मन समुझाउब हो।
x x x x x x
जब जब बाजइ खँजड़िया सबद सुनि अनकइ हो।
हरिनी ठाढ़ि ढकुलिया के नीचे हरिन क बिसूरइ हो।॥७॥"

राजा दशरथ के यहां राम के जन्मोत्सव का अवसर है। छठी और बरही मनाने की उत्सवधर्मिता अवधी क्षेत्र में अभी भी प्रचलित है। हिरण हिरणी से पूछ रहा है कि तुम किस चिंता में मन गिराये खड़ी हो।पानी के अभाव में या तुम्हारा चारागाह सूख गया है उसके लिए। हिरणी उत्तर देती है कि दोनों में से कोई भी कारण नहीं है। आज राम की छठी है। तुम्हें मार दिया जाएगा। सब कुछ के बाद हिरणी कौशल्या के पास जाकर कहती है कि हिरण का मांस तो आपके रसोईयाँ में पकेगा। मुझे हिरण की खाल ही दे दीजिए। उसे देखकर ही संतोष कर लूंगी और अपना जीवन व्यतीत करूंगी। कौशल्या ने हिरण की खाल देने से भी मना कर दिया।कहा कि राम उस खाल से बनी खझड़ी से खेलेंगे।जब-जबउसखाल से बनी खझड़ी बजती है। उससे निकलने वाली ध्वनि जब-जब हिरनी के कानों में पड़ती है वह अन्यमनस्क होकर विसूरती है। यहाँ हिरणी प्रतीकात्मक रूप में आई है। वह कोई सामान्य निचले तबके की स्त्री भी हो सकती है। जिसका पति राजघराने में बेगार करता होगा। वह उसे इस बेगारी से मुक्ति दिलाना चाहती है। दूसरा पहलू यह है की एक सामान्य स्त्री रानी से यह सब कहने का साहस कर रही है। उच्चवर्गीय परिवार की स्त्रियों में प्रतिरोध का यह साहस घर के भीतर भी नहीं होता है बाहर की तो बात ही छोड़ दीजिए। बद्रीनारायण जी समाजविज्ञानी हैं। वह इस लोकगीत की व्याख्या दूसरे तरह से करते हुए लिखते हैं-"आज के दलित इसी हिरणी के वंशज हैं और आज भी ऊँची जाति के जमीदारों के दमन के शिकार हो रहे हैं।"[12] वह हिरनी को स्त्री की नजर से देखने की बजाय 'जातिगत'दलित नजरिए से पेश करते हैं। किसी भी निगाह से देखिये लेकिन उसमें जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह कि यहाँ भी कविता परदु:ख कातरता से उपजी है।गीतकार हिरण के बध से दु:खी है।वह चाहता तो राम की छठी के उत्सव में शामिल होकर राजपरिवार की प्रशंसा में कसीदे भी गढ़ सकता था। लेकिन उस स्थिति में न्याय चेतना अपने उच्चतम स्तर तक नहीं पहुँचती।

एक अन्य सोहर का संदर्भ नीचे दिया जा रहा है जहाँ एक निम्नवर्गीय स्त्री अपने पति के समक्ष राजा दशरथ के बारे में कह रही है-

"भोर भये भिनुसार चिरज्या एक बोलइ।
राजा झपटि के खोलइँ केवरिया हेलिनि डीठि परि गै।
परि गै हेलिनिया क डीठि राजै के मुख ऊपर ॥१॥
हेलिनि विनवै हेलवा सँग अपने पुरुख सँग।
हेलवा आजु देखेउँ निरबंसी गुइयाँ कैसे पुरवै॥२॥[13]

सुबह-सुबह मेहतरानीकी नजर राजा दशरथ के ऊपर पड़ जाती है। वह अपने पति से कहती है की सुबह निरबंसिया व्यक्ति का मुंह देख लिया। देखो दिन कैसे बिताता है। संतान विहीन व्यक्ति का सुबह जगते ही सामने पड़ जाना शुभ नहीं माना जाता यह लोक की अपनी मान्यता है। मेहतरानी निम्नवर्गीय स्त्री है। वह राजा दशरथ के बारे में सकुन - अपशगुन जैसे अपने विचार को साझा कर रही है।यह वर्गीय चेतना का मामला है।उच्च वर्गीय स्त्रियों में यह साहस नहीं होता है , या ना के बराबर होता है। लोकगीत को सामाजिक चिंतन या समाज चेतना के संदर्भ में प्रकारांतर से व्याख्यायित किया जा सकता है।एक ऐसा समाज जिसमें स्त्री- पुरुष, उँच-नीच,छोटा -बड़ा , राजा -रंक कोई भी हो यदि वह संतानविहीन है तो उसे सामाजिक अवमानना का सामना करना ही होगा। दूसरे जब निम्नवर्गीय व्यक्ति किसी राजा- रानी के प्रति इस तरह आलोच्य भाव व्यक्त कर रहा हो तो यह कहा जा सकता है कि सामंतवादी समाज व्यवस्था का विरोध है। प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष रूप से ही सही।

 Copyright @ 2024 Author

एक अन्य लोकगीत में स्त्री अपनी माता (सासु) से सीधे संवाद भी नहीं कर पा रही है।जिसका उद्धरण नीचे दिया जा रहा है-

"मचियहि बैठी हैं सासू त बहुआ से पूछइँ रे।
बहुआ काहें तोर मुँहा पियरान गोड़ घहरावहि रे।।१।।
लाज सरम कइ बतिया मैं सासूजी से कइसे कहउँ रे।
सासू तोरा पूत छयल छबिलवा अँचरवा पिच डारइँ रे ॥२॥
ये अलबेली बहुरिया लछन न लगाबहु रे।
दुलहिनि आज के नवयें महिनवाँ होरिल तोहरे होइहैं रे।।३।।
अरे सासू जी के होबइ चेरिया ननद मन हरबइ रे।
अपने राजा के प्रान पियारी होरिल मोरे होइहइँ रे।॥४॥"[14]

उस समाज में दैहिक और यौन नैतिकता के बंधन कितने कठोर हैं। जहाँ एक स्त्री दूसरी स्त्री से साफ शब्दों में यह नहीं कह पा रही है कि वह गर्भवती है। वह व्यंजना में कह रही है कि आपका बेटा छलिया , छबीला , रसिक है। उसने हमारा आंचल मसल दिया है। अंत तक आते-आते स्त्री इस दशा में पहुँच जाती है कि वह किसी की चेरी , किसी का मन प्रसन्न करने वाली और पति की प्राण प्यारी हो जाना चाहती है। वह यह मानकर चल रही है की पुत्र का जन्म हुआ तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा। मैं खुशी में सास की चेरी ,गुलाम हो जाउंगी पति स्नेह करने लगेगा। आखिर वह कैसा समाज है जहाँ बिना पुत्रवती हुए स्त्री का जीवन सुख से व्यतीत होने वाला नहीं है।

"छापक पेड़ छिउल कर पत्तबन घनबनि हो।
जिहिं तर ठाड़ी सीता देइ बहुत विपति में हो ॥१॥
कहाँ पाउब सोने क छुरउना कहाँ पाउब धगरिन।
को मोरी जागइ रइनिया कवन दुख बाँटइ ॥२॥
पहिला रोचन राजा दसरथ दूसर कौसिल्ला रानी।
तीसरा दिन्ह्यो देवर लछिमन पियहि न बतायउ।।८।।"[15]

जिन प्रसंगों को हिंदी की मूल धारा के कवियों ने जानबूझकर छोड़ दिया या उनकी अनदेखी की। उन विषयों को लोकगीतों में स्त्रियाँझूम कर गाती हैं।सीता निर्वासन का प्रसंग हिंदी के महाकवि तुलसीदास से लगाई सभी परवर्ती और पूर्ववर्ती कवियों ने त्याज्य समझा। उसकी चर्चा तक करने से कतराते रहे। लोकगीत में सीता का सामंती समाज और पितृसत्ता का विरोध यहां देखते बन रहा है। लोकापवाद के भय से गर्भवती सीता को राम निर्वासित कर देते हैंवह ढकुली के पेड़ के नीचे खड़ी विपत्ति में चिंतातुर दिखाई दे रही हैं। प्रसव के बाद कौन बच्चे की नाभि नाल कटेगा, धग्रिन कहां मिलेगी , वन में सोने का छुराभी नहीं होगा। रात भर उस असहनीय पीड़ा में कौन मेरे साथ होगा। मेरी समस्या को सुनेगा कौन आदि विचार उनके मन में आ रहे हैं। प्रसव के उपरांत सीता कलेजा कठोर करती हैं। संदेश पहुंचाने वाले से कहती हैं कि सबको पुत्र का रोचना (संदेश) देना।सबसे पहले ससुर राजा दशरथ को , उसके बाद रानी कौशल्या को और अंत में देवर लक्ष्मण को भी।उसके बाद सीता की वाणी में कठोरता है। पितृसत्तात्मक समाज के मुंह पर तमाचा है। वह कहती हैं कि राम को यह संदेश मत बताना।यह लोक की उसके गीतों में निहित ताकत है। जो सीता पूरे रामचरितमानस में शुरू से लगाए आखिर तक पति राम की अनुगामिनी हैं। उनका यह प्रतिरोधात्मक रूप देखने के लायक है।

रामचरितमानस के एक प्रसंग रामवनगमन से पीछे मुद्रित लोकगीत की तुलना कर लीजिए। मामला साफ हो जाएगा-

"प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ।"

राम आगे- आगे चल रहे हैंसीता अनुगामिनी है।सीता इतनी सावधानी के साथ पग आगे बढ़ाती हैं कि कहींमेरे पैर पति के चरण चिन्हों के ऊपर ना पड़ जाए।

आप इसे मर्यादा, अनुशासन कह लें या फिर सामंती समाज व्यवस्था में स्त्री की दुर्दशा। निर्भरता आपके विचारों पर है। एक स्त्री जो इतनी घबराई, डरी सहमी हुई है कि वह पति (देवता) के पद चिन्हों को भी पूज्य मान रही है। उसका दूसरा पक्ष यह भी हो सकता है कि ऐसा हो जाने पर उसकी कुटाई हो। यहां से लोकगीत और हिंदी की

 Copyright @ 2024 Author

मूलधारा की कविता के सामर्थ्य मेंफर्क देखा जा सकता है।वही सीता दोनों जगह पर हैं।एक जगह पदचिन्हों को सावधानी से बचा रही हैं तो दूसरी जगह कठोर वाणी में हिदायत के साथ कह रही हैं की यह संदेश सबको देना लेकिन पति राम को मत देना।

एक अन्य सोहर गीत का उद्धरण नीचे दिया जा रहा है। जहाँ पितृसत्ता और जातीय दंभ दोनों एकसाथ देखे जा सकते हैं-

"ऊँचे डगरिया कै कुइयाँ सुघर एक पानी भरै हो।
घोड़वा चढ़े राजपुतवा तौबोलिया बहुत करैं हो ॥१॥
को है घरे मा अति दारुनि पनियाँ क पठइस हो।
जो जेठहिं के दुपहरिया में पनियाँ भराइस हो ॥२॥
जाकर धना तुम सुन्दरि सो प्रभु कहाँ गये हो।
जो जेठहिँ के दुपहरिया में पनियाँ भराइन हो ॥ ३॥
ऐसन धना जौ पाइत परम सुख पाइत हो।
धन! अँखिया में राखित छिपाय करेजवा में जोगइत हो ॥ ४ ॥
अस रजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो।
अपने प्रभुजी के पायें कै पनहिया तौ तोहँसे ढोवाइत हो ॥५॥"[16]

सोहर के इस गीत को ध्यान से देखिए और मन में विचार कीजिएएक से अधिक खिड़की, दरवाजे और वातायन खुलते हुए नजर आएंगे। किसी रास्ते के किनारे एक कुएँ पर सुंदर स्त्री पानी भर रही है। एक राही जिसके संबोधन के लिए 'रजपूतवा'शब्द प्रयोग किया गया है। वह किसी सामंत, राजा का बेटा होगा। दूसरा प्रयोग अवधी क्षेत्र में क्षत्रिय जाति के लिए किया जाता है। वह मनचला स्त्री से कह रहा है की कौन इतना कठोर हृदय व्यक्ति है जोतुमसे इस भरी जेठ की दुपहरी में कुएँ पर पानी भरा रहा है। यदि तुम हमारी प्राणप्रिया होती तो मैं तुम्हें आंखों में छुपा लेता और अपने हृदय में रखता।यह उस क्षेत्र की सामाजिक अवस्थित को दिखाता है। आप धनाढ्य हों, सामाजिक व्यवस्था क्रम में ऊपरी पायदान से आने वाली जाति से ताल्लुक रखते हैं तो चलते राह किसी स्त्री से ठिठोली,छीटाकसी कर सकते हैं। लेकिन जो उससे भी महत्वपूर्ण बात है वह गीत की अंतिम पंक्तियों में दिखाई दिखाई देती है। उस स्त्री का प्रतिउत्तर है।वह कहती है, मैं तुम्हारे जैसे 'रजपूतवा' किसी श्रेष्ठता के अहंकार में लिप्त व्यक्ति को पाती तो उसे नौकर रखती। उससे अपने पति की पनही उठवाने का काम कराती। यह लोक में प्रतिरोधी चेतना का अपरोक्ष माध्यम है।यहां से हिंदी की मूलधारा की कविता और लोक के कला रूपों की तुलना कीजिए। आदिकाल से लगाए रीतिकाल तक चले आइए।ऐसी चेतना का दर्शन मिल पाना कठिन है।यह लोक के प्रतिरोध की ताकत है और उसका आलहदा तरीका है।

इन गीतों का बारीकी से विश्लेषण करें तो यह दिखाई देता है की हाशिये का समाज अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है। इसके अतिरिक्त बहुत से सोहर गीतों में रूठने और मनाने के प्रसंग मिल जाएंगे। रूठने-मनाने के प्रसंग प्रेम की अभिव्यंजना और बराबरी के भाव को प्रदर्शित करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. कबीर, पारसनाथ तिवारी,नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली,पृ. 61
2. रामचरितमानस, तुलसीदास,गीताप्रेस गोरखपुर,पृ. 62
3. वही, पृ. 36
4. वही, पृ. 952
5. वही, पृ. 952
6. बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड द्वितीय सर्ग, 15वाँ श्लोक,गीताप्रेस गोरखपुर,पृ. 15
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृ. 164
8. कविता-कौमुदी, भाग-3, रामनरेश त्रिपाठी,हिन्दी मन्दिर, सुलतानपुर,पृ. 133
9. वही, पृ. 136-137
10. वही, पृ. 163

 Copyright @ 2024 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-8, No.04,August: 2024

11. दलित वीरांगनाएँ और मुक्ति की चाह, बद्री नारायण,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 14
12. कविता-कौमुदी, भाग-3, रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 140
13. वही, पृ. 145-146
14. वही, पृ. 186-187
15. रामचरितमानस, तुलसीदास, पृ. 404
16. कविता-कौमुदी, भाग-5, रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 58-59

Copyright @ 2024 Author